[2019] 4 उम. नि. प. 91

मल्लिकार्जुनैय्या

बनाम

ननजैय्या और अन्य

[2011 की सिविल अपील सं. 7768]

26 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे और न्यायमूर्ति दिनेश महेश्वरी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 54 और भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 30] – अपील – परिसीमा अवधि – वाद भूमि पर 12 वर्ष से कम अवधि से निरंतर कब्जा – ऐसा कब्जा खुला, अनन्य और प्रतिवादी की जानकारी में नहीं होना – कब्जे के आधार पर वाद भूमि में स्वामित्व के हक का दावा करना – दावा खारिज होना – यदि अभिलेख पर के साक्ष्यों से यह साबित होता है कि वादी का वाद भूमि पर कब्जा खुला, अनन्य और प्रतिवादी के जानकारी के बिना है और निरंतर कब्जे की अवधि 12 वर्ष पूरी नहीं होती है तो मात्र कुछ अवधि के निरंतर कब्जे के आधार पर प्रतिकूल कब्जे का दावा करते हुए वाद भूमि में स्वामित्व का हक अर्जित नहीं किया जा सकता है और ऐसा दावा शून्य और अविधिमान्य होगा ।

वर्तमान मामले में, अपीलार्थी (वादी) द्वारा फाइल इस अपील के निदर्शक सिविल वाद में उसने वादपत्र से संबद्ध अनुसूची 'ए' में वर्णित संपत्तियों, कारागुंद ग्राम, जवगल हुबली, आर्सीकेरे ताल्लुक, हसन जिला, कर्नाटक में स्थित क्रम सं. 17/3 में 20 गुंटास, क्रम सं. 29/1 में 32½ गुंटास और क्रम सं. 34/3 में 11 गुंटास के पश्चिमी भाग की भूमि के संबंध में अपना हक घोषित करने की ईप्सा की गई है । पूर्वोक्त भूमि में से क्रम सं. 17/3 में एक गुंटा भूमि और क्रम सं. 29/1 का एक भाग जो वादपत्र के अनुसूची 'ख' में उल्लिखत है और उस संबंध में शाश्वत व्यादेश की ईप्सा की गई है । वादपत्र में वर्णित संपत्ति के अन्य

विशिष्टियों का विस्तृत रूप से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है, इस कारण से कि अब इन कार्यवाहियों में विवाद्यक पूर्वोक्त भूमि के एक भाग क्रम सं. 17/3 में एक गुंटा माप की भूमि (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'वाद भूमि' कहा गया है) तक ही सीमित है । विचारण न्यायालय ने तारीख 14 जनवरी, 1999 के निर्णय और डिक्री द्वारा वाद को भागत: डिक्री करते हुए, अपीलार्थी (वादी) को अनुसूची 'ए' संपत्ति के बृहत्तर भाग के स्वामी के रूप में घोषित किया है किन्तु यह मत व्यक्त किया कि प्रतिवादियों ने क्रम सं. 17/3 के एक गुंटा भूमि पर प्रतिकूल कब्जा द्वारा अपना पूर्ण हक प्राप्त कर लिया है और इसलिए, अनुसूची 'ख' संपत्ति के संबंध में प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश की ईप्सा करने की प्रार्थना करने को नामंजूर कर दिया । अपीलार्थी (वादी) ने व्यथित महसूस किया और प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील फाइल की । प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) ने अपने प्रति-आक्षेपों को फाइल की । प्रथम अपील न्यायालय ने 1999 की नियमित अपील सं. 11 में तारीख 10 सितम्बर, 2004 के आदेश द्वारा सारत: विचारण न्यायालय के सभी निष्कर्षों को कायम रखा किन्तु वाद भूमि के मापन के बारे में कुछ सीमा तक डिक्री को उपांतरित कर दिया । अपीलार्थी (वादी) व्यथित महसूस किया और कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील फाइल की । कर्नाटक उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील को भागत: मंजूर कर लिया और अपीलार्थी (वादी) को क्रम सं. 17/3 में 19 गुंटा माप की भूमि और क्रम सं. 34/3 में 11 गुंटा भूमि माप की भूमि के संबंध में स्वामी होना घोषित किया किन्तु क्रम सं. 17/3 में एक गुंटा माप की वाद भूमि के स्वामी होने के रूप में उसके दावे को खारिज कर दिया और इसके बजाय प्रतिवादियों को वाद भूमि पर उनके प्रतिकूल कब्जे को ध्यान में रखते हुए, उसका स्वामी घोषित किया । उच्च न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध अपीलार्थी ने व्यथित महसूस किया और इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत के माध्यम से वर्तमान अपील फाइल की । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रथमत:, यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी (वादी) संपूर्ण भूमि जिसमें वाद भूमि अर्थात् अतिक्रमणित भाग भी सम्मिलित

है, का स्वामी था जो प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) के कब्जे में होना अभिकथित किया है । दूसरे शब्दों में, प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) ने इसके ऊपर प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् करते हुए संपूर्ण भूमि जिसमें वाद भूमि सम्मिलित है, पर अपीलार्थी (वादी) के स्वामित्व को स्वीकार किया है, द्वितीयतः, प्रतिकूल कब्जे को साबित करने का भार प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) पर था, क्योंकि वे वही थे जिन्होंने इस अभिवाक् को किया था, तृतीयतः, न्यायालय के मत में, प्रत्यर्थी (प्रतिवादियों) इस भार का निर्वहन करने में असफल रहे, चतुर्थतः, दोनों सह-स्वामियों/भाइयों के बीच न तो कोई प्रतिकूलता या/और न ही उनके बीच किसी संघर्ष का कोई अवयव था, क्योंकि इस प्रकृति के विवाद्यक में जहां दोनों पक्षकार एक-दूसरे के संबंधी होते हैं, एक का कब्जा तब तक दूसरे का कब्जा समझा जाता है, जब तक कि तथ्यों से अन्यथा दर्शित नहीं होता है, पंचमतः, प्रत्यर्थी (प्रतिवादियों) यह साबित करने के लिए कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत करने में असफल रहे कि वे संपूर्ण भूमि या वाद भूमि या इसके भाग पर खुले तौर पर स्वामित्व के अपने अधिकार का प्राख्यान किया है और इसकी जानकारी बारह वर्षों से अधिक अवधि के लिए निरंतर रूप से अपीलार्थी (वादी) को थी, षष्टमतः, विधि का यह सुस्थिर सिद्धांत है कि मात्र निरंतर कब्जा चाहे जितने भी लंबी अवधि का हो यदि इसके असली स्वामी के समान भी रहा हो तो भी यह प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को कायम रखने के लिए पर्याप्त नहीं होता है जब तक कि यह भी साबित नहीं कर दिया जाता है कि ऐसा कब्जा खुला, प्रतिकूल, अनन्य और इसके असली स्वामी की जानकारी में संपत्ति पर स्वामित्व के अधिकार के प्राख्यान के साथ है । यहां ऐसा मामला नहीं है । सप्तमतः, यह ऐसा मामला है जहां दोनों पक्षकार यह नहीं जानते थे कि प्रत्येक के अनन्य कब्जे में कितनी भूमि थी । दूसरे शब्दों में, यहां ऐसा मामला है जहां वाद के दोनों पक्षकार यह नहीं जानते हैं कि कितनी भूमि अपीलार्थी (वादी) के अनन्य कब्जे में थी और कितनी भूमि प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) के कब्जे में थी । इसका तभी पता चला जब अपीलार्थी (वादी) ने वर्ष 1983 में राजस्व विभाग के माध्यम से वाद भूमि का मापन कराया तो उसे इस बात की जानकारी हुई कि भूमि का कुछ भाग जो उसके हिस्से में आती थी, प्रत्यर्थियों के कब्जे में है । इसके पश्चात्, अपीलार्थी (वादी) ने घोषणा और व्यादेश और वैकल्पिक रूप में वाद भूमि पर कब्जे का भी

दावा करते हुए, प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) के विरुद्ध वर्ष 1992 में एक वाद फाइल किया । इसलिए, वाद जानकारी की तारीख अर्थात् वर्ष 1983 से बारह वर्ष की अवधि के भीतर फाइल किया गया था । इस अवधि के दौरान भी प्रतिवादियों ने यह साबित करने के लिए कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया कि उन्होंने कभी वाद भूमि के विनिर्दिष्ट भाग पर अपने स्वामित्व के अधिकार का प्राख्यान किया था जो खुले तौर पर उनसे संबंधित था और अपीलार्थी (वादी) की जानकारी में प्रतिकूलता का प्राख्यान करता था । न्यायालय के मत में, अपीलार्थी (वादी) को जब इस बात की जानकारी हुई कि प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) ने वर्ष 1983 में उसकी भूमि पर अतिक्रमण कर लिया है और तब उसने जानकारी की तारीख से बारह वर्ष की अवधि के भीतर वाद सही ही फाइल किया है, इसलिए, प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् अपीलार्थी (वादी) के विरुद्ध प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) के विरुद्ध उपलब्ध नहीं था, क्योंकि बारह वर्ष की अवधि उनके द्वारा पूरी नहीं की गई थी । मामले के इस मत को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) का वाद भूमि पर प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक पूर्ण होने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, यद्यपि, प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) ने वर्ष 1983 के पूर्व वाद भूमि पर कब्जा होने का दावा किया है तो भी उसका कोई परिणाम नहीं होगा, इस साधारण कारण से कि ऐसे कब्जा न तो अनन्य था न ही पक्षद्रोही था और न ही वास्तविक मापन के पूर्व पक्षकारों की जानकारी में था । इन सभी कारणों से, हमारा यह सुविचारित मत है कि निचले न्यायालय यह घोषित करने में न्यायोचित नहीं थे कि प्रत्यर्थी (प्रतिवादियों), प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि के अतिक्रमणित भाग के स्वामी हो गए हैं । न्यायालय के मत में, सुस्थिर विधि के सिद्धांतों के विरुद्ध होने के नाते यह निष्कर्ष अपास्त किए जाने योग्य है । (पैरा 22, 23, 24, 25, और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 14 एस. सी. सी. 316 : **चट्टी कोनाती राव और अन्य** बनाम **पल्लै वेंकटा सुब्बा राव ;**	20

[2006] (2006) 7 एस. सी. सी. 570 :
टी. अंजनप्पा और अन्य बनाम
सोमालिंगप्पा और एक अन्य । 19

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की सिविल अपील सं. 7768.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री राजेश महाले और क्रुतीन आर. जोशी

प्रत्यर्थियों की ओर से कोई नहीं

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे ने दिया ।

न्या. सप्रे – यह अपील कर्नाटक उच्च न्यायालय, बंगलौर द्वारा 2005 की नियमित द्वितीय अपील (आरएसए) संख्या 23 में पारित तारीख 14 नवम्बर, 2007 के अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध निदेशित है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने इसमें के अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील को भागत: मंजूर कर लिया था ।

2. इस अपील का निपटारा करने के लिए इसमें निम्नलिखित कुछ तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक है ।

3. उस सिविल वाद में जिससे यह अपील उद्भूत हुई है, अपीलार्थी, वादी है और प्रत्यर्थी, प्रतिवादी है ।

4. अपीलार्थी (वादी) द्वारा फाइल इस अपील के निदर्शक सिविल वाद में उसने वादपत्र से संबद्ध अनुसूची 'ए' में वर्णित संपत्तियों, कारागुंद ग्राम, जवगल हुबली, आर्सीकेरे ताल्लुक, हसन जिला, कर्नाटक में स्थित क्रम सं. 17/3 में 20 गुंटास, क्रम सं. 29/1 में 32½ गुंटास और क्रम सं. 34/3 में 11 गुंटास के पश्चिमी भाग की भूमि के संबंध में अपना हक घोषित करने की ईप्सा की गई है । पूर्वोक्त भूमि में से क्रम सं. 17/3 में एक गुंटा भूमि और क्रम सं. 29/1 का एक भाग जो वादपत्र के अनुसूची 'ख' में उल्लिखत है और उस संबंध में शाश्वत व्यादेश की ईप्सा की गई है ।

5. वादपत्र में वर्णित संपत्ति के अन्य विशिष्टियों का विस्तृत रूप

से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है, इस कारण से कि अब इन कार्यवाहियों में विवाद्यक पूर्वोक्त भूमि के एक भाग क्रम सं. 17/3 में एक गुंटा माप की भूमि (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'वाद भूमि' कहा गया है) तक ही सीमित है ।

6. अपीलार्थी (वादी) के अनुसार, उपर्युक्त उल्लिखित संपूर्ण भूमि जिसमें वाद भूमि भी सम्मिलित है, उसके पिता की मृत्यु के पश्चात्, उसके भाइयों के बीच विभाजन द्वारा वर्ष 1980 में उसके हिस्से में आ गई थी । तथापि, वर्ष 1983 में अपीलार्थी ने यह नोटिस किया कि वाद भूमि अर्थात् 17/3 में एक गुंटा भूमि पर प्रतिवादियों द्वारा अतिक्रमण कर लिया गया है ।

7. इसीलिए, अपीलार्थी ने भूमि मापन कराने के लिए सर्वे विभाग में एक आवेदन फाइल किया । भूमि मापन होने पर, यह नोटिस किया गया कि प्रतिवादियों ने क्रम सं. 17/3 के एक गुंटा भूमि की सीमा तक अपीलार्थी के हिस्से का अतिक्रमण कर लिया है ।

8. तद्नुसार, स्थानीय पंचायत के हस्तक्षेप से मामले को हल किया गया और उसके अनुसरण में प्रतिवादियों ने अपीलार्थी को वाद भूमि के अतिक्रमण भाग का कब्जा वापस कर दिया ।

9. इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने संपूर्ण भूमि जिसमें वाद भूमि सम्मिलित थी, पर अपने स्वामित्व के अधिकार की घोषणा करने के लिए और वाद भूमि के संबंध में स्थायी व्यादेश मंजूर करने के लिए प्रतिवादियों के विरुद्ध वर्ष 1992 में एक सिविल वाद फाइल किया । वैकल्पिक रूप में, अपीलार्थी ने वाद भूमि के कब्जे के अनुतोष की भी ईप्सा की, यदि उसे वाद भूमि के कब्जे में नहीं होना अभिनिर्धारित किया जाता है ।

10. प्रत्यर्थियों ने सारत: वाद भूमि पर अपने कब्जे का बचाव किया और यह अभिकथित किया कि लंबे समय से वाद भूमि पर उनके प्रतिकूल कब्जा के आधार पर वाद भूमि पर उनके स्वामित्व हक पूर्ण हो गए हैं ।

11. विचारण न्यायालय ने तारीख 14 जनवरी, 1999 के निर्णय

और डिक्री द्वारा वाद को भागत: डिक्री करते हुए, अपीलार्थी (वादी) को अनुसूची 'ए' संपत्ति के बृहत्तर भाग के स्वामी के रूप में घोषित किया है किन्तु यह मत व्यक्त किया कि प्रतिवादियों ने क्रम सं. 17/3 के एक गुंटा भूमि पर प्रतिकूल कब्जा द्वारा अपना पूर्ण हक प्राप्त कर लिया है और इसलिए, अनुसूची 'ख' संपत्ति के संबंध में प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश की ईप्सा करने की प्रार्थना करने को नामंजूर कर दिया ।

12. अपीलार्थी (वादी) ने व्यथित महसूस किया और प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील फाइल किया । प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) ने अपने प्रति-आक्षेपों को फाइल किया । प्रथम अपील न्यायालय ने 1999 की नियमित अपील सं. 11 में तारीख 10 सितम्बर, 2004 के आदेश द्वारा सारत: विचारण न्यायालय के सभी निष्कर्षों को कायम रखा किन्तु वाद भूमि के मापन के बारे में कुछ सीमा तक डिक्री को उपांतरित कर दिया ।

13. अपीलार्थी (वादी) व्यथित महसूस किया और कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील फाइल किया । कर्नाटक उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील को भागत: मंजूर कर लिया और अपीलार्थी (वादी) को क्रम सं. 17/3 में 19 गुंटा माप की भूमि और क्रम सं. 34/3 में 11 गुंटा भूमि माप की भूमि के संबंध में स्वामी होना घोषित किया किन्तु क्रम सं. 17/3 में एक गुंटा माप की वाद भूमि के स्वामी होने के रूप में उसके दावे को खारिज कर दिया और इसके बजाय प्रतिवादियों को वाद भूमि पर उनके प्रतिकूल कब्जे को ध्यान में रखते हुए, उसका स्वामी घोषित किया ।

14. उच्च न्यायालय के इस आदेश के विरुद्ध अपीलार्थी ने व्यथित महसूस किया और इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत के माध्यम से वर्तमान अपील फाइल की ।

15. इस प्रकार, संक्षिप्त प्रश्न, जो इस अपील में विचार के लिए उद्भूत हुआ है वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में न्यायानुमत था कि प्रतिवादी (प्रत्यर्थी) क्रम सं. 17/3 में एक गुंटा भूमि की सीमा तक इस पर प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि के स्वामी हो गए हैं ।

16. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री राजेश महाले को सुना । नोटिस के बावजूद प्रत्यर्थियों की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ ।

17. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल को सुनने और मामले के अभिलेखों का परिशीलन करने के पश्चात्, हम इस अपील को मंजूर करने के लिए आबद्ध हैं और आक्षेपित निर्णय को उस सीमा तक अपास्त करने के लिए आबद्ध हैं जिस सीमा तक यह प्रतिवादियों (प्रत्यर्थियों) को क्रम सं. 17/3 में एक गुंटा माप की वाद भूमि का स्वामी होने के रूप में घोषित करता है और परिणामस्वरूप, प्रतिवादियों के विरुद्ध वाद भूमि के संबंध में वादी का वाद डिक्री करते हैं ।

18. 'प्रतिकूल कब्जा' क्या है और इसे साबित करने का भार किस पर है और न्यायालयों का ऐसे अभिवाक् पर विचार करने में क्या दृष्टिकोण होना चाहिए, यह इस न्यायालय के कई मामलों की विषय-वस्तु रहा है ।

19. **टी. अंजनप्पा और अन्य** बनाम **सोमालिंगप्पा और एक अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मात्र कब्जा चाहे जितनी भी लंबी अवधि का रहा है, का आवश्यक रूप से अभिप्राय यह नहीं है कि यह असली स्वामी के प्रतिकूल हो सकता है और प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक अर्जित करने की विशिष्ट आवश्यकता यह है कि ऐसा कब्जा असली स्वामी के हक को इनकार करता हो ।

20. पूर्वोक्त विनिश्चय का अवलंब लेते हुए, इस न्यायालय ने पुन: **चट्टी कोनाती राव और अन्य** बनाम **पल्लै वेंकटा सुब्बा राव**[2] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :-

> "14. इस न्यायालय के कतिपय प्रमाणिकताओं को ध्यान में रखते हुए, जिनमें से कुछ को उपर्युक्त निर्दिष्ट किया गया है, से सुरक्षित तौर पर यह कहा जा सकता है कि तथापि, मात्र लंबे कब्जे का आवश्यक रूप से अभिप्राय यह नहीं होता है कि यह असली स्वामी के प्रतिकूल में है । इसका अभिप्राय यह है कि प्रतिकूल

---

[1] (2006) 7 एस. सी. सी. 570.

[2] (2010) 14 एस. सी. सी. 316.

कब्जा जो असली स्वामी के हक को अभिव्यक्तत: या विविक्षतत: इनकार करता है और प्रतिकूल कब्जा गठित करने के अनुक्रम में है, कब्जे में पर्याप्त रूप से निरंतरता, प्रचार होना चाहिए और इस सीमा तक होना चाहिए, ताकि यह दर्शित हो कि यह असली स्वामी के प्रतिकूल है । कब्जे को इतना अधिक खुला और प्रतिकूल होना चाहिए ताकि इसका संपत्ति में हितबद्ध पक्षकारों को जानकारी हो । वादी, अपने हक के साथ ही कब्जे को भी बारह वर्ष के भीतर साबित करने के लिए आबद्ध है और जब एक बार वादी अपने हक को साबित कर देता है तो प्रतिवादी के ऊपर यह सिद्ध करने का भार आ जाता है कि उसका प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक पूर्ण हो गया है । प्रतिकूल कब्जे का दावा करने के लिए दो आधारभूत अवयव हैं अर्थात् प्रतिवादी का कब्जा वादी के प्रतिकूल होना चाहिए और इसके पश्चात् प्रतिवादी का बारह वर्षों की अवधि से निरंतर कब्जा बना रहना चाहिए ।"

21. उपर्युक्त उद्धृत प्रतिकूल कब्जे से संबंधित विधि को ध्यान में रखते हुए, जब हम वर्तमान मामले की परीक्षा करते हैं तो हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती है कि निचले न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में न्यायोचित नहीं थे कि प्रतिवादियों ने वाद भूमि पर अपने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वादी के समान वाद भूमि पर अपना हक पूर्ण कर लिया है । यह हम निम्नलिखित कारणों से कह सकते हैं ।

22. प्रथमत:, यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी (वादी) संपूर्ण भूमि जिसमें वाद भूमि अर्थात् अतिक्रमणित भाग भी सम्मिलित है, का स्वामी था जो प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) के कब्जे में होना अभिकथित किया है । दूसरे शब्दों में, प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) ने इसके ऊपर प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् करते हुए संपूर्ण भूमि जिसमें वाद भूमि सम्मिलित है, पर अपीलार्थी (वादी) के स्वामित्व को स्वीकार किया है, द्वितीयत:, प्रतिकूल कब्जे को साबित करने का भार प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) पर था, क्योंकि वे वही थे जिन्होंने इस अभिवाक् को किया था, तृतीयत:, हमारे मत में, प्रत्यर्थी (प्रतिवादियों) इस भार का निर्वहन करने में असफल रहे, चतुर्थत:, दोनों सह-स्वामियों/भाइयों के बीच न तो

कोई प्रतिकूलता या/और न ही उनके बीच किसी संघर्ष का कोई अवयव था, क्योंकि इस प्रकृति के विवाद में जहां दोनों पक्षकार एक-दूसरे के संबंधी होते हैं, एक के कब्जे को दूसरे तब तक का कब्जा समझा जाता है जब तक कि तथ्यों से अन्यथा दर्शित नहीं होता है, पंचमतः, प्रत्यर्थी (प्रतिवादियों) यह साबित करने के लिए कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत करने में असफल रहे कि वे संपूर्ण भूमि या वाद भूमि या इसके भाग पर खुले तौर पर स्वामित्व के अपने अधिकार का प्राख्यान किया है और इसकी जानकारी बारह वर्षों से अधिक अवधि के लिए निरंतर रूप से अपीलार्थी (वादी) को थी, षष्टमतः, विधि का यह सुस्थिर सिद्धांत है कि मात्र निरंतर कब्जा चाहे जितने भी लंबी अवधि का हो यदि इसके असली स्वामी के समान भी रहा हो तो भी यह प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को कायम रखने के लिए पर्याप्त नहीं होता है जब तक कि यह भी साबित नहीं कर दिया जाता है कि ऐसा कब्जा खुला, प्रतिकूल, अनन्य और इसके असली स्वामी की जानकारी में संपत्ति पर स्वामित्व के अधिकार के प्राख्यान के साथ है । यहां ऐसा मामला नहीं है । सप्तमतः, यह ऐसा मामला है जहां दोनों पक्षकार यह नहीं जानते थे कि प्रत्येक के अनन्य कब्जे में कितनी भूमि थी । दूसरे शब्दों में, यहां ऐसा मामला है जहां वाद के दोनों पक्षकार यह नहीं जानते हैं कि कितनी भूमि अपीलार्थी (वादी) के अनन्य कब्जे में थी और कितनी भूमि प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) के कब्जे में थी । इसका तभी पता चला जब अपीलार्थी (वादी) ने वर्ष 1983 में राजस्व विभाग के माध्यम से वाद भूमि का मापन कराया तो उसे इस बात की जानकारी हुई कि भूमि का कुछ भाग जो उसके हिस्से में आती थी, प्रत्यर्थियों के कब्जे में है ।

23. इसके पश्चात्, अपीलार्थी (वादी) ने घोषणा और व्यादेश और वैकल्पिक रूप में वाद भूमि पर कब्जे का भी दावा करते हुए, प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) के विरुद्ध वर्ष 1992 में एक वाद फाइल किया । इसलिए, वाद जानकारी की तारीख अर्थात् वर्ष 1983 से बारह वर्ष की अवधि के भीतर फाइल किया गया था । इस अवधि के दौरान भी प्रतिवादियों ने यह साबित करने के लिए कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया कि उन्होंने कभी वाद भूमि के विनिर्दिष्ट भाग पर अपने स्वामित्व के अधिकार का प्राख्यान किया था जो खुले तौर पर उनसे संबंधित था और अपीलार्थी (वादी) की जानकारी में प्रतिकूलता का प्राख्यान करता था ।

24. हमारे मत में, अपीलार्थी (वादी) को जब इस बात की जानकारी हुई कि प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) ने वर्ष 1983 में उसकी भूमि पर अतिक्रमण कर लिया है और तब उसने जानकारी की तारीख से बारह वर्ष की अवधि के भीतर वाद सही ही फाइल किया है, इसलिए, प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् अपीलार्थी (वाद) के विरुद्ध प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) के विरुद्ध उपलब्ध नहीं था, क्योंकि बारह वर्ष की अवधि उनके द्वारा पूरी नहीं की गई थी ।

25. मामले के इस मत को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) का वाद भूमि पर प्रतिकूल कब्जे द्वारा हक पूर्ण होने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, यद्यपि, प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) ने वर्ष 1983 के पूर्व वाद भूमि पर कब्जा होने का दावा किया है तो भी उसका कोई परिणाम नहीं होगा, इस साधारण कारण से कि ऐसा कब्जा न तो अनन्य था न ही पक्षद्रोही था और न ही वास्तविक मापन के पूर्व पक्षकारों की जानकारी में था ।

26. इन सभी कारणों से, हमारा यह सुविचारित मत है कि निचले न्यायालय यह घोषित करने में न्यायोचित नहीं थे कि प्रत्यर्थी (प्रतिवादियों), प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि के अतिक्रमणित भाग के स्वामी हो गए हैं । हमारे मत में, सुस्थिर विधि के सिद्धांतों के विरुद्ध होने के नाते यह निष्कर्ष अपास्त किए जाने योग्य है ।

27. पूर्ववर्ती चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अपील सफल होती है और तद्नुसार मंजूर की जाती है । आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है । जिसके परिणामस्वरूप, वादी (अपीलार्थी) का वाद संपूर्ण रूप से प्रतिवादियों के विरुद्ध डिक्री किया जाता है । प्रतिवादियों (प्रत्यर्थियों) को अतिक्रमणित भाग (क्रम सं. 17/3 में एक गुंटा भूमि) को खाली करने और अपीलार्थी-वादी को इसका कब्जा सौंपने के लिए तीन माह की अवधि मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.